संपादकीय जागरण

शनिवार, 14 अप्रैल, 2018 : वैशाख कृष्ण 13 वि. 2075

प्राप्त वस्तु का सदुपयोग ही परिस्थिति का सदुपयोग है

कठोर कानून की जरूरत

दुष्कर्म की घटनाओं में भयावह वृद्धि के साथ जिस तरह बच्चियों को भी बड़े पैमाने पर दुष्कर्म का शिकार बनाया जा रहा है उसे देखते हुए अब यह अनिवार्य हो गया है कि ऐसे वीभत्स अपराध के दोषियों को कठोरतम सजा देने के कुछ उपाय किए जाएं। इस मामले में और देर इसलिए नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि निर्भया कांड के बाद दुष्कर्म रोधी कानून को कठोर करने के जो उपाय किए गए थे वे पर्याप्त नहीं सिद्ध हुए। न तो दुष्कर्म के मामलों में कोई उल्लेखनीय कमी देखने को मिली और न ही बच्चियों के साथ होने वाली दुष्कर्म की घटनाओं में। उलटे इस तरह की घटनाएं बढ़ती ही दिख रही हैं। ऐसे में दुष्कर्म के अपराधियों पर लगाम लगाने के लिए जो कुछ भी संभव हो, उसे प्राथमिकता के आधार पर किया जाना चाहिए। दुष्कर्म और खासकर बच्चियों से दुष्कर्म के मामले समाज को शर्मिंदा करने के साथ ही देश की छवि को भी खराब करते हैं। ऐसी घिनौनी घटनाएं सभ्य समाज के चेहरे पर एक दाग की तरह तो चस्पा होती ही हैं, आम लोगों में सिहरन पैदा करने का भी काम करती हैं। कठुआ में एक बच्ची से दुष्कर्म की जघन्य घटना ने ठीक ऐसा ही किया है। यह स्वाभाविक ही है कि कठुआ की घटना को लेकर देश में कुछ वैसा ही रोष-आक्रोश देखने को मिल रहा है जैसा निर्भया कांड के समय देखने को मिला था। यदि केंद्रीय समाज कल्याण मंत्रालय बच्चों को यौन अपराधों से बचाने वाले पोक्सो कानून की धाराओं में बदलाव लाकर 12 साल से कम उम्र की लड़कियों से दुष्कर्म के अपराधियों के लिए मौत की सजा के प्रावधान पर विचार कर रहा है तो यह वक्त की मांग भी है और जरूरत भी।

बच्चियों से दुष्कर्म के अपराधियों को मौत की सजा संबंधी कानून हरियाणा, मध्यप्रदेश और राजस्थान में बनाए जा चुके हैं। इन राज्यों ने ऐसे कानून इसलिए बनाए, क्योंकि बच्चियों से दुष्कर्म थमने का नाम नहीं ले रहे थे। चूंकि इन राज्यों जैसी स्थिति सारे देश में दिख रही है इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि समाज कल्याण मंत्रालय अपने विचार को अमल में लाने के मामले में तेजी दिखाए। बच्चियों से हैवानियत के सिलसिले को जारी रहते हुए नहीं देखा जा सकता। इसमें दोराय नहीं कि दुष्कर्मी तत्वों के मन में खौफ पैदा करने और उन्हें ऐसी सजा देने की जरूरत है जो सबक सिखाने वाली हो, लेकिन यह ध्यान रहे कि केवल कठोर कानून बनाने से उद्देश्य की पूर्ति होने वाली नहीं है। कठोर कानून बनाने के साथ ही पुलिस जांच और न्याय प्रकिया को दुरुस्त करने की भी जरूरत है। दुर्भाग्य से यह कार्य हमारे नीति-नियंताओं के एजेंडे में नहीं नजर आता और इसका उदाहरण है उन्नाव का मामला। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं जिनसे यह पता चलता है कि दुष्कर्म के मामलों की जांच में न्यूनतम संवेदनशीलता का भी परिचय नहीं दिया जाता। निःसंदेह कठोर कानून तभी प्रभावी सिद्ध होते हैं जब उन पर अमल होता है, लेकिन ऐसे कानून बनाते समय यह भी देखना होगा कि उनका दुरुपयोग न होने पाए, क्योंकि अपने देश में यह काम भी खूब होता है।

समस्याएं बहुतेरी

बढ़ती सड़क दुर्घटनाओं से चिंतित राज्य सरकार ने ब्लैक स्पॉट चिह्नित कर उन्हें दुरुस्त करने के निर्देश दिए हैं। सड़क सुरक्षा के लिए जागरूकता अभियान भी चलाया जाएगा। इसकी जिम्मेदारी परिवहन विभाग को दी गई है। एक बंधी बंधाई सोच यही है कि यातायात नियमों के उल्लंघन व चालक की लापरवाही के कारण ही सबसे अधिक सड़क दुर्घटनाएं होती हैं। इसी सोच के तहत सरकार का सबसे अधिक फोकस जन जागरूकता अभियान चलाने पर है। प्रदेश में सड़क दुर्घटनाओं में कमी लाने के लिए एक विस्तृत कार्ययोजना तैयार करने के निर्देश भी दिए गए हैं। ये सारे उपाय सरकार अपने नजरिये से कर रही है, लेकिन समस्या की वजह कुछ और भी है।

> सुरक्षित चलने के लिए सड़कों का निर्माण जिन मानकों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए, अधिकांश सड़कें उस कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं

शुरुआत अगर सड़कों से करें तो सुरक्षित चलने के लिए सड़कों का निर्माण जिन मानकों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए, अधिकांश सड़कें उस कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। उचित संकेतकों का अभाव होता है। दुर्घटना बहुल क्षेत्र होने की सूचना पट्टिका तो लगा दी जाती है, लेकिन उस कमी को दूर करने का प्रयास नहीं किया जाता। उचित स्थान पर गतिअवरोधक कम ही दिखाई देते हैं। डिवाइडर रोड पर लोग जहां-तहां से मनचाहा कट बना लेते हैं, लेकिन विभाग इस पर ध्यान नहीं देता। ओवर स्पीडिंग मापने या ट्रैफिक नियमों के उल्लंघन पर कार्रवाई की कोई प्रभावी व्यवस्था नहीं है। लोग नियम जान कर भी अनजान बने रहते हैं और ट्रैफिक विभाग की ढिलाई उन्हें लापरवाह भी बना देती है। यही लोग यदि दिल्ली, मुंबई, कोलकाता जैसे बड़े महानगरों में प्रवेश करते हैं तो बिलकुल चाक चौबंद होकर जाते हैं। वहां यही लोग सारे ट्रैफिक नियमों का पालन करते हैं।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या जुकरबर्ग के माफीनामे और आश्वस्ति के बाद फेसबुक में लोगों को भरोसा लौट आएगा?

आज का सवाल

क्या आपको लगता है कि कावेरी जल विवाद के लिए आइपीएल मैच को बाधित करना सही है?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर **POLL** लिखें, स्पेस देकर **Y, N** या **C** लिखकर 57272 पर भेजें
Y –हां, **N**–नहीं, **C**–कह नहीं सकते

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।
सभी आंकड़े प्रतिशत में।

सामाजिक प्रेरणा का स्रोत हैं प्रतिमाएं

बद्री नारायण

जहां भी आंबेडकर सरीखे नायकों की प्रतिमाएं होती हैं वहां सामाजिक स्पेस का सृजन होने के साथ ही सामाजिक जीवन में एक जीवंतता भी आती है

नायकों एवं महापुरुषों की प्रतिमाएं स्थापित करने की प्रवृति भारतीय समाज में सर्वत्र देखी जा सकती है। प्रतिमाएं स्थापित करने की यह प्रक्रिया प्रायः सामाजिक समूहों के अस्मिता बोध को जागृत करने एवं आत्म सम्मान बढ़ाने का जरिया मानी जाती है। प्रतिमा स्थलों पर महापुरुषों के जन्म दिन और अन्य स्मृति दिवसों के अवसर पर पूजापाठ, सभा-सम्मेलन आदि आयोजन होते हैं, लेकिन डॉ. भीमराव आंबेडकर सरीखे सामाजिक समता के नायकों की प्रतिमा स्थापना की प्रक्रिया का मात्र यही एक अर्थ नहीं होता। इस प्रक्रिया में अन्य कई अर्थ भी समाहित होते हैं। जो समुदाय महापुरुष अथवा नायक से जुड़े होते हैं या उनसे प्रेरणा पाते हैं वे प्रतिमास्थल को अपने सामाजिक स्पेस के विस्तार के रूप में भी देखते हैं। संबंधित समुदायों के लोग अनेक बार प्रतिमा स्थलों के इर्द-गिर्द बातचीत, गप्प से लेकर सामुदायिक विवादों के समझौते भी करते हैं। कई बार अपना पक्ष मजबूती से रखने के लिए वहां जाकर शपथ भी खाई जाती है। कई बार किसी बड़े काम को सफलतापूर्वक संपन्न करने के प्रण भी ऐसे स्थलों पर ही लिए जाते हैं। इस तरह प्रतिमा स्थल सामाजिक समूहों के विकसित हो रहे पब्लिक फोरम का हिस्सा हो जाते हैं। डॉ. आंबेडकर के तमाम प्रतिमा स्थल इसी रूप में विकसित हुए हैं। मायावती ने जब उत्तर प्रदेश में अपने शासन के दौरान लखनऊ में दलित महानायकों की मूर्तियां स्थापित कीं और विशेष पार्क बनवाए तो राजनीतिक जगत में इसकी व्यापक आलोचना हुई। इस आलोचना का तापमान इस हद तक बढ़ा कि यह उनके विधानसभा चुनावों में हार के महत्वपूर्ण कारणों में से एक कारण बन कर उभरा। जब ये मूर्तियां स्थापित हुईं तो हम लोगों ने वहां आने-जाने वालों की राय का एक सर्वे किया। उस वक्त उत्तर प्रदेश के दूर देहातों से इन पार्कों में आने वाले दलित समाज के लोग अत्यंत खुश होते थे। उनका कहना था कि राज्य की राजधानी के बीच अपने नायकों की मूर्तियां देख हमारा सीना चौड़ा हो जाता है। हम यहां आराम से कुछ समय बिताते हैं और थोड़ी चैन की सांस लेते हैं। यहां आकर हमें सुकून तो मिलता ही है, अपने और अपने समाज पर गर्व भी होता है।

प्रतिमा स्थलों के सामाजिक स्पेस होने की क्षमता कई बार सामाजिक समूहों में विभाजन भी पैदा करती है। बनारस के पास एक गांव है जयापुर, जिसे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने गोद लिया है। इस गांव में एक जाटव पट्टी है। जाटव पट्टी की आबादी लगभग 200-250 के आस-पास है। इसी पट्टी में मोदी जी के सहयोग से डॉ. आंबेडकर की एक आदमकद प्रतिमा स्थापित की गई है। इस प्रतिमा की स्थापना के तमाम सकारात्मक परिणाम तो हैं ही, इसके कारण जाटव समाज में कुछ विवाद भी उत्पन्न हुआ। जाटव पट्टी इस प्रतिमा को लेकर दो भागों में विभाजित है। एक पक्ष का कहना है कि प्रतिमा के पास की खाली जगह का फायदा उसके आस-पास के परिवारों को ही मिल रहा है और वे लोग उस सामूहिक भूमि के इस्तेमाल से वंचित होते जा रहे हैं। यह जानना रोचक है कि इसी गांव में मुसहर बस्ती को अटल नगर नाम से विकसित किया गया है। इस अटल नगर में मुसहर जाति के जो लोग पहले झोपड़ियों में रहते थे, अब फ्लैट में रह रहे हैं, जो सोलर लाइट एवं पानी की आपूर्ति व्यवस्था से लैस हैं। यहां भी एक छोटा मंदिर है, जिसमें अन्य देवताओं के साथ-साथ शबरी की भी एक छोटी मूर्ति लगी है। कहते हैं कि भगवान राम ने इन्हीं शबरी की भक्ति से प्रभावित होकर उनके जूठे बेर खाए थे। इस मंदिर के आस-पास सघन वृक्ष लगाए गए हैं। प्रायः शाम को समुदाय के लोग यहां बैठकर अपना दुख-सुख बतियाते हैं। मुसहर जाति शबरी को अपनी कुलदेवी मानता है, किंतु एक नया परिवर्तन यह देखने को मिल रहा है कि अब रामनवमी के दिन अन्य जातियों के लोग भी यहां आकर शबरी की पूजा करने लगे हैं। वे इसे एक सिद्ध मंदिर मानते हैं। इस मंदिर का कोई पुजारी नहीं है। मंदिर में जो थोड़े-बहुत पैसे एवं प्रसाद चढ़ाया जाता है उसे मुसहर जाति के लोग आपस में वितरित कर लेते हैं। इस प्रकार प्रतिमाओं के आस-पास बने स्थल सामाजिक अर्थ में कुछ नया भी जोड़ते हैं। यह जुड़ाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रकार का होता है।

अवधेश राजपूत

यह किसी से छिपा नहीं कि प्रायः प्रतिमाओं के आस-पास की जमीन के अतिक्रमण को लेकर विवाद खड़े हो जाते हैं। गांवों और कस्बों में स्थापित आंबेडकर की प्रतिमाओं को लेकर उभरने वाले जमीन के विवाद नए नहीं हैं, लेकिन कभी-कभी उनमें तेजी भी देखने को मिलती है। जब हम लोगों ने आंबेडकर की प्रतिमाएं बनाने-बेचने वालों से बात की तो पता चला कि इन प्रतिमाओं की खरीद पुलिस भी करती है। ऐसा इसलिए, क्योंकि जब कभी किसी विवाद के कारण कहीं पर आंबेडकर की प्रतिमा को नुकसान पहुंचाया जाता है तो पुलिस क्षतिग्रस्त प्रतिमा हटाकर आनन-फानन नई प्रतिमा स्थापित कर देती है। ध्यान रहे कि दलितों में लगातार विकसित हो रही चेतना और उनकी प्रतिरोधी प्रवृति के प्रतीकात्मक दमन के लिए भी कई बार आंबेडकर की प्रतिमाओं को नुकसान पहुंचाया जाता है। इन प्रतिमाओं को नुकसान पहुंचाने का एक कारण समाज के अन्य वर्गों के लोगों का वैमनस्य भी होता है। जहां भी नायकों की प्रतिमाएं होती हैं वहां सामाजिक स्पेस का सृजन होने के साथ सामाजिक जीवन में जीवंतता भी आती है। कांशीराम कहा करते थे कि मैंने महाराष्ट्र से सीखा कि आंबेडकरवादी आंदोलन कैसे नहीं चलाया जाना चाहिए। महाराष्ट्र में आंबेडकर प्रतिमा स्थलों पर कुछ आयोजन तो होते हैं, पर वहां दलित समुदाय के दैनंदिन जीवन का जुड़ाव कम होता है।

नायकों एवं महापुरुषों के प्रतिमा स्थल समुदायों के दैनंदिन विमर्श के स्थल के रूप में विकसित होने चाहिए। वे विभिन्न सामाजिक समूहों के साझा विमर्श के केंद्र बन सकें तो और भी बेहतर। महापुरुषों की प्रतिमाओं के स्थल ही नहीं, विभिन्न देवी-देवताओं के स्थान-स्थान पर बने मंदिरों के आसपास की जगहों का भी एक सामाजिक महत्व है। ऐसे समुदायों के लिए ऐसे स्थलों का खास अर्थ है जो भूमिहीन हैं अथवा जिनके घर छोटे हैं या फिर जिनके पास चौपाल या बैठक का स्थान नहीं है। ऐसे सामाजिक समूहों के लिए प्रतिमा स्थल ही खुली हवा में सांस लेने की एक ऐसी जगह हैं जहां वे दुनिया-जहान की बातें अथवा विभिन्न समस्याओं पर चर्चा कर सकते हैं। बिहार के मिथिला में अनेक जगहों पर पीपल के पेड़ के नीचे बने दुसाध जाति के नायक सहलेस के स्थान हैं, जिन्हें गहवर कहा जाता है। ये स्थान भी एक तरह के सामाजिक केंद्र हैं। बिहार के मगध क्षेत्र में बने चूहड़मल के मंदिर दीना-भद्री के आसपास के स्थान सीमांत पर बसे सामाजिक समूहों के लिए आस्था, सामाजिक अस्मिता बोध के केंद्रों के साथ सामुदायिक केंद्र भी हैं। इन्हें मात्र अस्मिता की राजनीति के चश्मे से देखने से इनमें निहित कई सामाजिक अर्थ कहीं खो जाएंगे। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि ऐसे अर्थ बचे रहें। ऐसे अर्थों से ही सामाजिक समूहों को प्रेरणा और शक्ति मिलती है।

(लेखक समाजशास्त्री एवं गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान के निदेशक हैं)

response@jagran.com

अभी भी शेष है बाबा साहब का सपना

कृष्ण प्रताप सिंह

बाबा साहब के अनुयायियों ने भी एकता बढ़ाने वाली बंधुता सुनिश्चित करने की जहमत नहीं उठाई

बाबा साहब डॉ. भीमराव आंबेडकर की ओर से देश और समाज की जो सेवा की गई उसके अनेक आयाम हैं, लेकिन संविधान निर्माण के वक्त उसकी प्रारूप समिति के अध्यक्ष के तौर पर निभाई गई जिस भूमिका ने उन्हें 'संविधान निर्माता' बना दिया वह इस अर्थ में अनमोल है कि आज हम अपनी राजनीति में नियमों, नीतियों, सिद्धांतों, नैतिकताओं, उसूलों और चरित्र के जिन संकटों से दो-चार हैं उनके अंदेशे उन्होंने तभी भांप लिए थे। उन्होंने संविधान लागू होने के पहले और उसके बाद बार-बार आगाह किया था कि ये संकट ऐसे ही बढ़ते गए तो न केवल संविधान, बल्कि आजादी को भी तहस-नहस कर सकते हैं। तब किसी ने भी उनकी आशंकाओं पर गंभीरता नहीं प्रदर्शित की। उन्हें नजरंदाज करने वालों से तो इसकी अपेक्षा ही नहीं की जा सकती थी, लेकिन उन्हें पूजने वालों ने भी संकटों के समाधान के लिए सारे देशवासियों में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता बढ़ाने वाली बंधुता सुनिश्चित करने के लिए उनके सुझाए रास्ते पर चलने की जहमत नहीं उठाई। संविधान के अधिनियमित, आत्मार्पित एवं अंगीकृत होने से ऐन पहले, 25 नवंबर, 1949 को उन्होंने उसे 'अपने सपनों का' अथवा 'तीन लोक से न्यारा' मानने से इन्कार करके उसकी सीमाएं रेखांकित कर दी थीं।

विधिमंत्री के तौर पर अपने पहले ही साक्षात्कार में डॉ. आंबेडकर ने कहा था कि यह संविधान अच्छे लोगों के हाथ में रहेगा तो अच्छा सिद्ध होगा, लेकिन अगर बुरे हाथों में चला गया तो इस हद तक नाउम्मीद कर देगा कि 'किसी के लिए भी नहीं' नजर आएगा। उनके शब्द थे, 'मैं महसूस करता हूं कि संविधान चाहे कितना भी अच्छा क्यों न हो, यदि वे लोग जिन्हें संविधान को अमल में लाने का काम सौंपा जाए, खराब निकले तो निश्चित रूप से संविधान खराब सिद्ध होगा। दूसरी ओर, संविधान चाहे कितना भी खराब क्यों न हो, यदि वे लोग जिन्हें संविधान को अमल में लाने का काम सौंपा जाए, अच्छे हों तो

संविधान अच्छा सिद्ध होगा।' आंबेडकर ने चेताया था कि 'संविधान पर अमल केवल संविधान के स्वरूप पर निर्भर नहीं करता। संविधान केवल विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे राज्य के अंगों का प्रावधान कर सकता है। उन अंगों का संचालन लोगों पर और उनके द्वारा अपनी आकांक्षाओं एवं अपनी राजनीति की पूर्ति के लिए बनाए जाने वाले राजनीतिक दलों पर निर्भर करता है।' उन्होंने जैसे खुद से सवाल किया था कि आज की तारीख में जब हमारा सामाजिक मानस अलोकतांत्रिक है और राज्य की प्रणाली लोकतांत्रिक तब कौन कह सकता है कि भारत के लोगों और राजनीतिक दलों का भविष्य का व्यवहार कैसा होगा? शायद वे यह देख रहे थे कि आगे चलकर लोकतंत्र से हासिल सहूलियतों का लाभ उठाकर परस्पर विरोधी विचारधाराएं रखने वाले राजनीतिक दल बन जाएंगे। उनके निकट इसका सबसे अच्छा समाधान यह था कि सारे भारतवासी देश को अपने पंथ से ऊपर रखें, न कि पंथ को देश से ऊपर, लेकिन शायद ऐसा होने को लेकर वह आश्वस्त नहीं थे और इसीलिए यह कहने से खुद को रोक नहीं पाए, 'यदि राजनीतिक दल अपने पंथ को देश से ऊपर रखेंगे तो हमारी स्वतंत्रता एक बार फिर खतरे में पड़ जाएगी और संभवतयः हमेशा के लिए खत्म हो जाए। हम सभी को इस संभाव्य घटना का दृढ़ निश्चय के साथ प्रतिकार करना चाहिए। हमें अपनी आजादी की खून के आखिरी कतरे के साथ रक्षा करने का संकल्प करना चाहिए।'

बाबा साहब के अनुसार संविधान लागू होने के साथ ही हम अंतर्विरोधों के नए युग में प्रवेश कर गए थे और सबसे बड़ा अंतर्विरोध था कि वह एक ऐसे देश में लागू हो रहा था जिसे संविधान के जरिये नागरिकों की राजनीतिक समता का उद्देश्य तो प्राप्त होने जा रहा था, लेकिन आर्थिक एवं सामाजिक समता कहीं दूर भी दिखाई नहीं दे रही थी। उन्होंने नवनिर्मित संविधान को प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के हाथों में दिया तो आग्रह किया था कि वे जितनी जल्दी संभव हो, नागरिकों के बीच आर्थिक एवं सामाजिक समता लाने के जतन करें, क्योंकि इस अंतर्विरोध की उम्र लंबी होने पर उन्हें देश में उस लोकतंत्र के ही विफल हो जाने का अंदेशा सता रहा था, जिसके तहत 'एक व्यक्ति-एक वोट' की व्यवस्था को हर संभव समानता तक ले जाया जाना था। आज यह किसी से छिपा नहीं कि सामाजिक एवं आर्थिक समता लाने के उनके आग्रह के उलट सत्ताओं का सारा जोर जातीय गोलबंदियों को मजबूत करने पर है। अगर बाबा साहब की भारतीयता की यह अवधारणा स्वीकार कर ली गई होती तो शायद परिदृश्य कुछ और होता कि-'कुछ लोग कहते हैं कि हम पहले भारतीय हैं, बाद में हिंदू या मुसलमान। मुझे यह स्वीकार नहीं है। मैं चाहता हूं कि लोग पहले भी भारतीय हों और अंत तक भारतीय रहें। भारतीय के अलावा कुछ भी न हों।'

response@jagran.com

तथ्य-कथ्य | एफडीआइ प्रवाह (आंकड़े अरब रुपये में)

स्रोत : वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय

वर्ष	एफडीआइ प्रवाह
2008–09	2731.16
2009–10	2461.91
2010–11	2272.89
2011–12	3036.61
2012–13	2237.08
2013–14	2351.10
2014–15	2944.77
2015–16	3623.83
2016–17	3918.84
2017–18*	3143.91

*(अप्रैल-दिसंबर 2017 तक)

ऊर्जा

यक्ष-प्रश्न

प्रगतिशील युग का मानव मस्तिष्क आरंभ से ही प्रश्नों से घिरा रहा है। अनेकानेक प्रकार के प्रश्नों की श्रृंखला न केवल उसके विवेकवान होने का परिचायक है, बल्कि मानव के सतत विकास की कुंजी भी साबित हुई है। नाना प्रकार के विचार और परिकल्पनाएं माना कि अंधे की लाठी के टटोलने जैसी होती हैं, किंतु उसी मंचन से उपलब्धि रूपी वैज्ञानिक शक्तियां व संसाधन और विकास रूपी रत्न भी प्राप्त होते रहे हैं। मनन रूपी पहलू यह है कि हम धन, पद, यश रूपी कितनी ही उपलब्धियां क्यों न हासिल कर लें, हमें पूर्ण संतुष्टि नहीं मिलती। यहां तक कि कोई उपलब्धि जिसे हासिल करने में हमने सालों लगाए होते हैं, उसकी प्राप्ति का सुख उठा भी नहीं पाते कि हमारे भीतर की रिक्तता अतृप्ति महसूस कर ठोकर मारती है और हम दूर ज्ञात-अज्ञात के क्षितिज पर नजरें टिकाए सुख यहां नहीं, वहां है की मृग मरीचिका में भटकते हुए चल पड़ते हैं। जैसे-जैसे हमारी उम्र गुजरती है, इच्छाएं भी बढ़ती जाती हैं। अब यक्ष प्रश्न यह उठता कि क्या हमारे अंतस की प्यास कभी बुझ सकती है? अगर नहीं तो फिर कबीर दास, नानक, महात्मा बुद्ध, महावीर आदि मानवता की महानतम विभूतियां कैसे अपने-अपने अंतस की प्यास को बुझाने में सफल रहीं।

कहीं ऐसा तो नहीं कि हम अपने अंतस की प्यास को पहचान न पा रहे हों? किसी एक जेब में रखी वस्तु उस जेब के बजाय हम कितनी ही जेबों को क्यों न टटोल लें, हमें नहीं मिलेगी। महात्मा बुद्ध और महावीर जैसे राजपुत्र उसी अंतस की प्यास से परेशान होकर वन गए। हां और जब उन्हें वो मिल गया जिसे पा लेने के बाद जन्म-जन्म की प्यास बुझ जाती है तो वे फिर लौटे, किंतु उनका सुख महलों के बजाय जनसामान्य की ओर था। उन्हें पता चल चुका था कि महल और महत्वाकांक्षाएं उस प्यास को नहीं बुझा सकतीं। अगर उसे बुझाना ही है तो हमें उस प्यास को उसके सच्चे रूप में समझना होगा और ध्यान व समाधि रूपी सही दिशा देनी होगी। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यही है कि चारों तरफ भीतर से बाहर तक अतृप्ति महसूस करने के बाद भी हमारा मोह भंग नहीं होता और न ही हम उसे पहचानने की चेष्टा करते हैं। उसे पहचाने बगैर हम उसे सही दिशा दे भी कैसे सकते हैं।

अजय गोंडवी

पाठकनामा

pathaknama@nda .jagran.com

देश को चाहिए सकारात्मक विकल्प

सपा-बसपा की साझा चुनौती शीर्षक से लिखे अपने लेख में डॉ. एके वर्मा ने 2019 के आम चुनाव में सपा-बसपा के संभावित गठजोड़ को भाजपा के लिए चिंताजनक बताने के बावजूद इस बेमेल गठबंधन की चुनावी सफलता को लेकर जो संदेह व्यक्त किया है, वह उचित है। देश को मोदी सरकार की विकासपरक नीतियों का सकारात्मक विकल्प चाहिए, जो कि वर्तमान स्थिति में कोई भी राजनीतिक गठबंधन दे पाएगा, इसमें संदेह है, क्योंकि मौजूदा परिदृश्य में कांग्रेस सहित सभी विपक्षी दलों की सोच केवल मोदी-विरोध तक सिमटी हुई है। मोदी सरकार की विकासपरक नीतियों से आगे बढ़कर भारत को विकसित राष्ट्र की ओर ले जाने वाली सोच के मामले में सभी विपक्षी दल फिलहाल खाली नजर आ रहे हैं। आठ माह बाद 2019 दस्तक देने वाला है। इस अल्पावधि में किसी भी विपक्षी गठबंधन के लिए मोदी सरकार की राष्ट्रहितैषी नीतियों के विकल्प स्वरूप उससे बेहतर कोई कार्य-योजना देश के समक्ष प्रस्तुत कर पाना संभव नहीं दिखाई देता। मोदी सरकार ने अपनी विकासवादी सोच से देश की आंखों में भारत को विकसित राष्ट्र बनाने का जो ख्वाव जगाया है, देश की जनता उसे साकार होते देखना चाहती है। क्या सपा-बसपा का अवसरवादी गठजोड़ या मोदी-विरोध पर आधारित कांग्रेस की नकारात्मक राजनीति देश के इस स्वप्न को साकार करने में समर्थ है? इस प्रश्न का यदि विपक्ष के पास कोई नीतियुक्त उत्तर है तो प्रस्तुत करे। अन्यथा की स्थिति में अब धर्म और जाति के आधार पर बांटने वाली नकारात्मक राजनीति से देश की आजिज जनता को विकास के रूप में सकारात्मक विकल्प चाहिए।

डॉ. वीपी पाण्डेय, एसोसिएट प्रोफेसर, अलीगढ़

सुरक्षित हो बेटी

कठुआ और उन्नाव की शर्मनाक घटना की हर कोई निंदा कर रहा है। जब भी ऐसी कोई घटना होती है तो मुख्यमंत्री व अन्य नेता खेद व्यक्त कर देते हैं। कुछ दिन तक हाय-तौबा होती है, उसके बाद फिर सब कुछ वैसे ही चलने लगता है। दिल्ली का निर्भया कांड होने पर देशभर में आंदोलन हुए, अब फिर ऐसी घटना होने पर विरोध प्रदर्शन हो रहे हैं, किन्तु घटनाएं थमने का नाम नहीं ले रही हैं। इससे सरकार का बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ का नारा थोथा सा नजर आने लगा है। बेटी को पढ़ाने से पहले उसे सुरक्षित भी करना होगा।

mahesh_nenava@yahoo.com

और कितनी निर्भया

रामराज्य का सपना देखती सूबे की सरकार में न जाने कितनी निर्भया इंसाफ को तरस रही होंगी। हाल ही में सामने आए उन्नाव कांड में आखिर हाई कोर्ट क्यों यह कहने को मजबूर हुआ कि 'ऐसे में तो पुलिस प्रशासन से जनता का भरोसा ही उठ जाएगा'। क्यों हर बार इन्साफ दिलाने के लिए मीडिया को उतारना पड़ता है जिसके बाद सियासत गर्माती है और प्रशासन की नींद खुलती है। समाज में फैली इस विसंगतियों से निपटने के लिए हमे वैचारिक दारिद्रता से उभरना होगा। सवाल यह है कि कब हमारी सरकारें कुम्भकर्णी नींद से जगेंगी और देश की बेटियां सुरक्षित होंगी।

अभिषेक मालवीय, नोएडा

कठघरे में इंसाफ

महिला सुरक्षा को लेकर भाजपा सरकार की नीतियों में बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ का अभियान देश भर में पहले स्थान में रखा गया। लेकिन उसी सरकार में एक महिला के साथ दुष्कर्म का मामला सामने आता है। दुष्कर्म का आरोपी और कोई नहीं, बल्कि इसी पार्टी का विधायक है। अपनी ही पार्टी के विधायक पर गंभीर आरोप लगने पर सरकार चुप क्यों है? अपराध करने वाला व्यक्ति अपराधी होता है, फिर वह कोई भी हैसियत क्यों न रखता हो।

asifr8795@gmail.com

नई तकनीक का दौर

वरिष्ठ अर्थशास्त्री भरत झुनझुनवाला ने अपने लेख, रोजगार नीति मांग रही नई नीति, में मौजूदा समय में रोजगार के बदलते तरीकों पर प्रकाश डाला है। लेखक का मानना है कि पहले केवल तेज गति से निर्माण कार्यों को अंजाम देने के लिए रोबोट का उपयोग होता था, लेकिन अब कंप्यूटर द्वारा बौद्धिक कार्य भी किए जाने से श्रमिकों की जरूरत कम हो रही है। मैं बताना चाहता हूं कि पहले विद्यालय में पचास शिक्षकों को भिन्न- भिन्न कक्षाओं में पढ़ाने के लिए बहुत माथापच्ची करनी पड़ती थी, लेकिन अब एक सॉफ्टवेयर के जरिए यह काम तुरंत हो जाता है। इसी प्रकार किराना सामान व सब्जियां भी ऑनलाइन आर्डर के जरिए घर पर मंगाई जा रही हैं। इससे उन दुकानदारों के व्यवसाय में भी बढ़ोतरी हुई है, इसलिए हमें अब यह बात गांठ बांध लेनी चाहिए कि हर क्षेत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का दौर है और हम सबको इसके अनुरूप ढलना ही होगा। इसका आशय है कि अब पुरानी नौकरियों में कमी आएगी क्योंकि उनका स्थान तकनीक ले लेगी। ऐसे में अब जरूरत है कि शिक्षा की पद्धति को भी रोजगार के नए अवसरों के अनुकूल बनाया जाए। रोजगारोन्मुखी शिक्षा देश को अराजकता की ओर जाने से रोक सकती है। जिन क्षेत्रों में रोजगार बढ़ने की संभावना है, हमें उन क्षेत्रों की ओर युवाओं को मोड़ना होगा। सर्वे बताता है कि 48 फीसद लोग नई तकनीक से रोजगार के अवसर घटने को लेकर आशंकित हैं, लेकिन 52 फीसद लोग मानते हैं कि इससे ऐसा नहीं होगा। यदि नए रोजगार के अवसर पैदा किए जाएं तो यह देश के लिए सुखद परिस्थिति होगी, परन्तु रोबोट व आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस पर अत्यधिक टैक्स लगाना अनुचित होगा क्योंकि इससे रोजगार के नए अवसर पैदा होने की राह में कठिनाई आएगी। इसकी जगह सरकार युवाओं को रोजगार के नए अवसर लपकने के लिए प्रेरित कर सकती है, यह देशहित में होगा।

स्नेह प्रभा झा, नोएडा

ट्वीट-ट्वीट

मौन ओढ़े हैं सभी दुश्वारियां होंगी जरूर। राख के नीचे दबी चिंगारियां होंगी जरूर। आज भी आदम की बेटी हंटरों की जद में है। हर गिलहरी के बदन पर धारियां होंगी जरूर। बाबुल की 'गुड़िया' को खिलौना समझने वालों के खिलाफ जाग जाइए, वरना आंगन की किलकारियां खामोश हो जाएंगी।

डॉ. कुमार विश्वास@DrKumarVishwas

सासाराम, कठुआ के साथ और भी खबरों का हिस्सा न बनीं कितनी घटनाएं। कहां जा रहे हैं हम। बड़े शहरों में हाई प्रोफाइल और छोटे शहरों में जघन्य अपराध पर अछूता कोई स्थान नहीं। कोई कानून, कोई व्यवस्था कुछ नहीं कर सकती जब चरित्र का ही उचित विकास नहीं है।

योगेश्वर दत्त@DuttYogi

जलियांवाला बाग में उस दिन इंकलाब का नारा था। बैसाखी का पावन दिन था, खुशी का आलम सारा था। धांय-धांय, कायर डायर ने, तब, निहत्थों को मारा था। अब तो कह दो शर्मिंदा हो, 'हां हमने कहर उतारा था।'

शशि थरूर@ShashiTharoor

यह अविश्वसनीय है। महज 15 साल के अनीश भानवाला ने 25 मीटर की रैपिड फायर स्पर्धा में स्वर्ण पदक जीत लिया। बधाई अनीश।

वीरेंद्र सहवाग@virendersehwag

जनपथ

चैनल अरु अखबार में एक खबर बस गर्म,
ज्यों भारत में चल रहा आज सिर्फ दुष्कर्म।
आज सिर्फ दुष्कर्म गर्म है खूब सियासत,
सत्ता दल है झेल रहा चौतरफा सांसत।
सब झूठे हमदर्द चहे ये दल या वो दल,
जो बिकता है आज वही दिखलाते चैनल।

– ओमप्रकाश तिवारी

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा जागरण प्रकाशन लि. के लिए डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित एवं 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित, संपादक (दिल्ली एनसीआर) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No 50755/90 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त। वर्ष 28 अंक 269